अर्धमागधी आगमसाहित्य में समाधिमरण की अवधारणा

- प्रो. सागरमल जैन

अर्धमागधी आगमसाहित्य में समाधिमरण की अवधारणा का अति विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अर्धमागधी आगमसाहित्य के ग्रन्थों का जो कालक्रम निर्धारित किया है, उसके आधार पर समाधिमरण से सम्बन्धित आगमों को हम निम्न क्रम में रख सकते हैं। अति प्राचीन स्तर के आगम ग्रन्थों में आचारांग एवं उत्तराध्ययन ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें समाधिमरण के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण मिलता है। आचारांग के प्रथम श्रुतस्कंध का 'विमोक्ष' नामक अष्टम अध्ययन विस्तार से समाधिमरण के तीन प्रकारों-- भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनिमरण एवं प्रायोपगमन की विस्तृत चर्चा करता है। इसी प्रकार उत्तराध्ययनसूत्र का पंचम "अकाम-मरणीय" अध्ययन भी अकाममरण और सकाम मरण (समाधिमरण) की चर्चा से सम्बन्धित है। इसके साथ ही किंचित परवर्ती माने गये उत्तराध्ययन के 36वें अध्ययन में भी समाधिमरण की विस्तृत चर्चा है। इसमें समवायांग की दृष्टि से उत्कृष्ट, मध्यम एवं जघन्य ऐसे तीन प्रकार के समाधिमरणों का उल्लेख है। प्राचीन स्तर के अर्धमागधी आगमों में दशवैकालिक का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके आठवें 'आचार-प्रणिधी' नामक अध्ययन में समाधिमरण के पूर्व की साधना का उल्लेख हुआ है। इसमें कषायों को अल्प करने या उन पर विजय प्राप्त करने का निर्देश है।

इसके अतिरिक्त कालक्रम की दृष्टि से किंचित परवर्ती माने गये अर्धमागधी आगमों में तृतीय अंग आगम स्थानांगसूत्र के द्वितीय अध्ययन के चतुर्थ उद्देशक में मरण के विविध प्रकारों की चर्चा के प्रसंग में समाधिमरण के विविध रूपों के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। चतुर्थ अंग आगम समवायांग में मरण के सत्रह भेदों की चर्चा है। ज्ञातव्य है कि नाम एवं क्रम के कुछ अंतरों को छोड़कर मरण के इन सत्रह भेदों की चर्चा भगवतीआराधना में भी मिलती है। इसमें बालमरण, बाल-पण्डितमरण, पण्डितमरण, भक्त-प्रत्याख्यान, इंगिनिमरण, प्रायोपगमन आदि की चर्चा है। इसी प्रकार पाचवें अंग-आगम भगवतीसूत्र में अम्बड संन्यासी एवं उसके शिष्यों के द्वारा गंगा की बालू पर अदत्त जल का सेवन नहीं करते हुए समाधिमरण करने का उल्लेख पाया जाता है। सातवें अंग उपासकदशासूत्र में भगवान महावीर के 10 गृहस्थ उपासकों के द्वारा लिये गए समाधिमरण और उसमें उपस्थित विघ्नों की विस्तृत चर्चा मिलती है। आठवें अंग आगम अन्तगड़दशा एवं नवें अंग आगम अनुत्तरौपपातिक दशा में भी अनेक श्रमणों एवं श्रमणियों के द्वारा लिए गये समाधिमरण का उल्लेख मिलता है। अन्तकृद्दशा की विशेषता यह है कि उसमें समाधिमरण लेने वालों की समाधिमरण के पूर्व की शारीरिक स्थिति कैसी हो गई थी, इसका सुन्दर विवरण उपलब्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपांग-साहित्य में मात्र औपपातिकसूत्र और रायपसेनीय में समाधिमरण ग्रहण करने वाले कुछ साधकों का उल्लेख है, किन्तु इनमें समाधिमरण की अवधारणा के सम्बन्ध में कोई विवेचन उपलब्ध नहीं है। इस सम्बन्ध में जो स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उन्हें अर्धमागधी आगमसाहित्य में प्रकीर्णक वर्ग के अन्तर्गत रखा गया है। प्रकीर्णकों में आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, संस्तारक, आराधना-पताका, मरणविभक्ति, मरणसमाधि एवं मरणविशुद्धि प्रमुख हैं। वर्तमान में जो मरणविभक्ति के नाम से प्रकीर्णक उपलब्ध हो रहा है उसमें मरणविभक्ति के अतिरिक्त मरणविशुद्धि, मरणसमाधि, संलेखनासूत्र, भक्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, आराधना प्रकीर्णक इन आठ ग्रन्थों को समाहित कर लिया गया है। यद्यपि भक्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, संलेखनाश्रुत, संस्तारक, आराधनापताका आदि ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से भी उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त तन्दुलवैचारिक नामक प्रकीर्णक के अन्त में भी समाधिमरण का विस्तृत विवरण पाया जाता है। यद्यपि श्वेताम्बर परम्परा में समाधिमरण का विस्तृत विवरण एवं उपदेश देने वाले संस्कृत एवं प्राकृत के परवर्ती आचार्यों के अनेक ग्रन्थ हैं, किन्तु प्रस्तुत विवेचन में हम अपने को मात्र अर्धमागधी आगमसाहित्य तक ही सीमित रखेंगे। शौरसेनी आगमसाहित्य में समाधिमरण का विवरण प्रस्तुत करने वाले आगम तुल्य जो ग्रन्थ हैं, उनमें मूलाचार एवं भगवतीआराधना नामक यापनीय परम्परा के दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इसमें मूलाचार समाधिमरण का विवरण प्रस्तुत करने के साथ ही मुनि आचार के अन्य पक्षों पर भी प्रकाश डालता है। यद्यपि इसके संक्षिप्त प्रत्याख्यान एवं बृहत् प्रत्याख्यान नामक अध्यायों में आतुरमहाप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान नामक प्रकीर्णकों की शताधिक गाथाएँ यथावत अपने शौरसेनी रूपान्तर में मिलती हैं। इसी प्रकार इसमें आवश्यकनिर्युक्ति की भी शताधिक गाथाएँ आवश्यक निर्युक्ति के नाम से ही मिलती हैं।

जहाँ तक भगवतीआराधना का प्रश्न है उसमें भी अर्धमागधी आगमसाहित्य की विशेष रूप से समाधिमरण से सम्बन्धित प्रकीर्णकों की शताधिक गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। ज्ञातव्य है कि भगवतीआराधना का मूल प्रतिपाद्य समाधिमरण है और यह ग्रन्थ अनेक दृष्टियों से मरणसमाधि, अपरनाम मरणविभक्ति और आराधना पताका से तुलनीय है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि आराधनापताका नामक ग्रन्थ श्वेताम्बर आचार्य वीरभद्र के द्वारा भगवतीआराधना का अनुकरण करके लिखा गया है। यद्यपि यह अभी शोध का विषय है। इसमें भक्तपरिज्ञा, पिण्डनिर्युक्ति और आवश्यकनिर्युक्ति की भी सैकड़ों गाथाएँ उद्धृत की गयी हैं। इसमें कुल 1110 गाथाएँ हैं।

इस प्रकार मरणविभक्ति और संस्तारक में समाधिमरण ग्रहण करने वालों के जो विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होते हैं वे ही उल्लेख भगवतीआराधना में भी बहुत कुछ समान रूप से मिलते हैं। आज मरणविभक्ति आदि प्रकीर्णकों का भगवतीआराधना से तुलनात्मक अध्ययन बहुत ही अपेक्षित है क्योंकि यह ग्रन्थ यापनीय परम्परा में निर्मित हुआ है और यापनीय अर्धमागधी आगमों को मान्य करते थे। अतः दोनों परम्पराओं में काफी कुछ आदान-प्रदान हुआ है। इसी प्रकार यापनीय परम्परा के ग्रन्थ बृहत्-कथाकोश में भी मरणविभक्ति भक्तपरिज्ञा, संस्तारक आदि की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेक कथाएँ संकलित हैं। मेरी दृष्टि में बृहत्-कथाकोश की कथाओं का मूल स्रोत चाहे ये प्रकीर्णक ग्रन्थ रहे हों, किन्तु ग्रन्थकार ने भगवतीआराधना की कथाओं का अनुकरण करके ही यह ग्रन्थ लिखा हैं, वह प्रकीर्णकों से परिचित नहीं रहा है। आज आवश्यकता है कि दोनों परम्पराओं के समाधिमरण सम्बन्धी इन ग्रन्थों एवं उनकी कथाओं का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया जाय।

यद्यपि मैं इस आलेख में इस तुलनात्मक अध्ययन को प्रस्तुत करना चाहता था, किन्तु समय सीमा को ध्यान में रखकर वर्तमान में यह सम्भव नहीं हो सका है।

समाधिमरण की यह अवधारणा अति प्राचीन है। भारतीय संस्कृति की श्रमण और ब्राह्मण-- इन दोनों परम्पराओं में इसके उल्लेख मिलते हैं, जिसकी विस्तृत चर्चा हमने 'समाधिमरण (मृत्युवरण) : एक तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक अध्ययन' नामक लेख में, जो सम्बोधि, वर्ष (1977-78) अंक 6 नं. 3-4 में पृ. 39-49 पर प्रकाशित है, की है। वस्तुतः यहाँ हमारा विवेच्य मात्र अर्धमागधी आगम है। इनमें आचारांग प्राचीन एवं प्रथम अंग आगम है। आचारांग के अनुसार समत्व या वीतरागता की साधना ही धर्म का मूलभूत प्रयोजन है। आचारांगकार की दृष्टि में समत्व या वीतरागता की उपलब्धि में बाधक तत्त्व ममत्व है और इस ममत्व का घनीभूत केन्द्र व्यक्ति का अपना शरीर होता है। अतः आचारांगकार निर्ममत्व की साधना हेतु देह के प्रति निर्ममत्व की साधना को आवश्यक मानता है। समाधिमरण देह के प्रति निर्ममत्व की साधना का ही प्रयास है। यह न तो आत्महत्या है और न तो जीवन से भागने का प्रयत्न। अपितु जीवन के द्वार पर दस्तक दे रही अपरिहार्य बनी मृत्यु का स्वागत है। वह देह के पोषण के प्रयत्नों का त्याग करके देहातीत होकर जीने की एक कला है।

आचारांगसूत्र और समाधिमरण

आचारांगसूत्र में जिन परिस्थितियों में समाधिमरण की अनुशंसा की गयी है वे विशेष रूप से विचारणीय हैं। सर्वप्रथम तो आचारांग में समाधिमरण का उल्लेख उसके प्रथम श्रुतस्कन्ध के विमोक्ष नामक अष्टम् अध्ययन में हुआ है। यह अध्ययन विशेष रूप से शरीर, आहार, वस्त्र आदि के प्रति निर्ममत्व एवं उनके विसर्जन की चर्चा करता है। इसमें वस्त्र एवं आहार के विसर्जन की प्रक्रिया को समझाते हुए ही अन्त में देह-विसर्जन की साधना का उल्लेख हुआ है। आचारांगसूत्र समाधिमरण किन स्थितियों में लिया जा सकता है इसकी संक्षिप्त किन्तु महत्त्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत करता है। इसमें समाधिमरण स्वीकार करने की तीन स्थितियों का उल्लेख है --

1. जब शरीर इतना अशक्त व ग्लान हो गया हो कि व्यक्ति संयम के नियमों का पालन करने में असमर्थ हो और मुनि के आचार नियमों को भंग करके ही जीवन बचाना सम्भव हो, तो ऐसी स्थिति में यह कहा गया है कि आचार नियमों के उल्लंघन की अपेक्षा देह का विसर्जन ही नैतिक है। आचार मर्यादा का उल्लंघन करके जीवन का रक्षण वरेण्य नहीं है। उसमें कहा गया है कि जब साधक यह जाने कि वह निर्बल और मरणान्तिक रोग से आक्रान्त हो गया है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियम या मर्यादा पूर्वक आहार आदि प्राप्त करने में असमर्थ है, तो वह आहारादि का परित्याग कर शरीर के पोषण के प्रयत्नों को बन्द कर दे। इससे देह के प्रति निर्ममत्व की साधना पूर्ण होती है।

2. जब व्यक्ति को लगे कि अपनी वृद्धावस्था अथवा असाध्य रोग के कारण उसका जीवन पूर्णतः दूसरों पर निर्भर हो गया है और वह संघ के लिए भार स्वरूप बन गया है तथा अपनी साधना करने में भी असमर्थ हो गया है तो ऐसी स्थिति में वह आहारादि का त्याग करके देह के प्रति निर्ममत्व की साधना करते हुए देह का विसर्जन कर सकता है।

3. इसी प्रकार साधक को जब यह लगे कि सदाचार या ब्रह्मचर्य का खण्डन किए बना जीवन जीना सम्भव नहीं है अर्थात् चरित्र-नाश और जीवित रहने में एक ही विकल्प संभव है तो वह तत्काल भी श्वास निरोध आदि करके अपना देहपात कर सकता है। ज्ञातव्य है कि यहाँ मूल-पाठ में शीत-स्पर्श है, जिसका टीकाकारों ने ब्रह्मचर्य के भंग का अवसर ऐसा अर्थ किया है, किन्तु मूल-पाठ और पूर्वप्रसंग को देखते इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि जिस मुनि ने अचेलता को स्वीकार कर लिया है वह शीत सहन न कर पाने की स्थिति में चाहे देह त्याग कर दे, किन्तु नियम भंग नहीं करे।

इससे यह फलित होता है कि आचारांगकार न तो जीवन को अस्वीकार ही करता और न वह जीवन से भागने की बात कहता है। वह तो मात्र यह प्रतिपादित करता है कि जब मृत्यु जीवन के द्वार पर दस्तक दे रही हो और आचार-नियम अर्थात् ली गई प्रतिज्ञा भंग किए बिना जीवन जीना सम्भव नहीं है, तो ऐसी स्थिति में मृत्यु का वरण करना ही उचित है। इसी प्रकार दूसरों पर भार बनकर जीना अथवा जब शरीर व्यक्तिगत साधना अथवा समाज सेवा दोनों के लिए सार्थक नहीं रह गया हो, ऐसी स्थिति में भी येनकेन प्रकारेण शरीर को बचाने के प्रयत्न की अपेक्षा मृत्यु का वरण ही उचित है। जब साधक को यह लगे कि सदाचार और मुनि आचार के नियमों का भंग करके आहार एवं औषधि के द्वारा तथा शीतनिवारण के लिए वस्त्र अथवा अग्नि आदि के उपयोग द्वारा ही शरीर को बचाया जा सकता है अथवा ब्रह्मचर्य को भंग करके ही जीवित रहा जा सकता है तो उसके लिए मृत्यु का वरण ही उचित है।

आचारांगकार ने नैतिक मूल्यों के संरक्षण और जीवन के संरक्षण में उपस्थित विकल्प की स्थिति में मृत्यु के वरण को ही वरेण्य माना है। ऐसी स्थिति में वह स्पष्ट निर्देश देता है कि ऐसा व्यक्ति मृत्यु का वरण कर ले। यह उसके लिए कालमृत्यु ही है क्योंकि इसके द्वारा वह संसार का अन्त करने वाला होता है। वह स्पष्ट रूप से कहता है कि यह मरण विमोह आयतन, हितकर, सुखकर, कालोचित, निःश्रेयस्कर और भविष्य के लिए कल्याणकारी होता है। आचारांगसूत्र में समाधि मरण के तीन रूपों का उल्लेख हुआ :-- भक्त प्रत्याख्यान, इंगनिमरण, प्रायोपगमन। उसमें समाधिमरण के लिए दो तथ्य आवश्यक माने गए हैं -- कषायों का कृशीकरण और दूसरा शरीर का कृशीकरण। इसमें भी मुख्य उद्देश्य तो कषायों का कृशीकरण है। भक्त परिज्ञा में प्रथम तो मुनि के लिए कल्प का विचार किया गया है और उसके अन्त में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह बताया गया है कि अकल्प का सेवन करने की अपेक्षा शरीर का विसर्जन कर देना ही उचित है। उसमें कहा गया है कि जब भिक्षु को यह अनुभव हो कि मेरा शरीर अब इतना दुर्बल अथवा रोग से अक्रान्त हो गया है कि गृहस्थों के घर भिक्षा हेतु परिभ्रमण करना मेरे लिए सम्भव नहीं है, साथ ही मुझे गृहस्थ के द्वारा मेरे सम्मुख लाया गया आहार आदि ग्रहण करना योग्य नहीं है। ऐसी स्थिति में एकाकी साधना करने वाले जिनकल्पी मुनि के लिए आहार का त्याग करके संथारा ग्रहण करने का विधान है। यद्यपि आचारांग के अनुसार संघस्थ मुनि बीमारी अथवा वृद्धावस्था जन्य शारीरिक दुर्बलता की स्थिति में आहारादि से एक दूसरे का उपकार अर्थात् सेवा कर सकते हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में भी उसमें चार विकल्पों का उल्लेख हुआ है--

1. कोई भिक्षु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं [साधर्मिक भिक्षुओं के लिए] आहार आदि लाऊंगा और [उनके द्वारा] लाया हुआ स्वीकार भी करूंगा।

अथवा

2. कोई यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं [दूसरों के लिए] आहार आदि नहीं लाऊंगा, किन्तु [उनके द्वारा] लाया हुआ स्वीकार करूँगा।

अथवा

3. कोई भिक्षु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं दूसरों के लिए आहार आदि लाऊंगा किन्तु उनके द्वारा लाया स्वीकार नहीं करूंगा।

अथवा

4. कोई भिक्षु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं न तो (दूसरों के लिए) आहार आदि लाऊँगा और न (उनके द्वारा) लाया हुआ स्वीकार करूंगा।

उपरोक्त चार विकल्पों में से जो भिक्षु प्रथम दो विकल्प स्वीकार करता है, वह आहारादि के लिए संघस्थ मुनियों की सेवा ले सकता है, किन्तु जो अंतिम दो विकल्प स्वीकार करता है, उसके लिए आहारादि के लिये दूसरों की सेवा लेने में प्रतिज्ञा भंग का दोष आता है। ऐसी स्थिति आचारांगकार का मन्तव्य यही है कि प्रतिज्ञा भंग नहीं करना चाहिये भले ही भक्त-प्रत्याख्यान कर देह त्याग करना पड़े। आचारांगकार के अनुसार ऐसी स्थिति में जब भिक्षु को यह संकल्प उत्पन्न हो कि -- मैं इस समय संयम साधना के लिए इस शरीर को वहन करने में ग्लान (असमर्थ) हो रहा हूँ, तब वह क्रमशः आहार का संवर्त्तन (संक्षेप) करे। आहार का संक्षेप कर कषायों (क्रोध, मान, माया और लोभ) को कृश करें। कषायों को कृश कर समाधिपूर्ण भाव वाला शरीर और कषाय दोनों ओर से कृश बना हुआ वह भिक्षु फलक की वस्थित हो समाधि मरण के लिए उत्थित (प्रयत्नशील) होकर शरीर का उत्सर्ग करे।

संथारा ग्रहण करने का निश्चय कर लेने के पश्चात् वह किस प्रकार समाधिमरण ग्रहण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करे इसका उल्लेख करते हुए आचारांगकार कहता है कि ऐसा भिक्षु ग्राम, नगर, कर्वट, आश्रम आदि में जाकर घास की याचना करे और उसे प्राप्त कर गांव के बाहर एकांत में जाकर जीव-जन्तु, बीज, हरित आदि से रहित स्थान को देखकर घास का बिस्तर तैयार करे और उस पर स्थित होकर इत्वरिक अनशन अथवा प्रायोपगमन स्वीकार करे।

ज्ञातव्य है कि आचारांगकार भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनिमरण और प्रायोपगमन ऐसे तीन प्रकार के समाधिमरण का उल्लेख करता है। इसमें भक्त प्रत्याख्यान में मात्र आहारादि का त्याग किया जाता है, किन्तु शारीरिक हलन-चलन और गमनागमन की कोई मर्यादा निश्चित नहीं की जाती है। इंगितमरण में आहार त्याग के साथ ही साथ शारीरिक हलन-चलन और गमनागमन का एक क्षेत्र निश्चित कर लिया जाता है और उसके बाहर गमनागमन का त्याग कर दिया जाता है। प्रायोपगमन या पादोपगमन में आहार आदि के त्याग के साथ-साथ शारीरिक क्रियाओं का निरोध करते हुए मृत्युपर्यन्त निश्चल रूप से लकड़ी के तख्ते के समान स्थिर पड़े रहना पड़ता है। इसीलिए आचारांगकार ने प्रायोपगमन संथारे के प्रत्याख्यान में स्पष्ट रूप से यह लिखा है कि काय, योग एवं ईर्या का प्रत्याख्यान करे। वस्तुतः यह तीनों संथारे की क्रमिक अवस्थाएँ हैं।

आचारांग में समाधिमरण का विवरण

क्रम से निर्ममत्व की स्थिति को प्राप्त धैर्यवान, आत्मनिग्रही और गतिमान साधक अद्वितीय इस समाधिमरण की साधना हेतु तत्पर हो। वे धर्म के पारगामी ज्ञान पूर्वक अनुक्रम से दोनों ही प्रकार के आरम्भ का (हिंसा का) परित्याग कर दें। वे कषायों को कृश करते हुए आहार की मात्रा को भी अल्प करें और परिषहों को सहन करें और इस प्रकार करते हुए जब अति ग्लान हो जाय तो आहार का भी त्याग कर दें। ऐसी स्थिति में न तो जीवन की आकांक्षा रखें और न मरण की, अपितु जीवन एवं मरण दोनों में ही आसक्त न हो। वे निर्जरापेक्षी मध्यस्थ समाधि भाव का अनुपालन करे तथा राग-द्वेष आदि आन्तरिक परिग्रह तथा शरीर आदि बाह्य परिग्रह का त्याग कर शुद्ध अध्यात्म का अन्वेषण करे।

यदि उन्हें अपने साधनाकाल में किसी भी रूप में आयुष्य के विनाश का कोई कारण जान पड़े तो वह शीघ्र ही समाधि मरण का प्रयत्न करें। ग्राम अथवा अरण्य में जहाँ हरित एवं प्राणियों आदि का अभाव (अल्पता) हो, उस स्थण्डिल भूमि पर तृण का बिछौना तैयार करे और वहाँ निराहार होकर शान्त भाव से लेट जाय। मनुष्य कृत अथवा अन्य किसी प्रकार के परीषह से आक्रान्त होने पर भी मर्यादा का उल्लघंन न करे तथा परीषहों को समभाव पूर्वक सहन करे। आकाश में विचरण करने वाले पक्षी एवं रेंगने वाले प्राणी यदि उसके शरीर का मांस नोचें, रक्त पीये तो भी न उन्हें मारे और न उनका निवारण करें और न उस स्थान से उठकर अन्यत्र जाय, अपितु यह विचार करे कि ये प्राणी मेरे शरीर का ही नाश कर रहे हैं, मेरे ज्ञानादि गुणों का नहीं। वह आश्रवों से रहित एवं आत्म तुष्ट हो उस पीड़ा को समभाव से सहन करे। ग्रन्थियों अर्थात् अन्तर-बाह्य परिग्रह से रहित मृत्यु के अवसर के पारंगत भिक्षु के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस समाधिमरण को संयमी जीवन के लिए अधिक श्रेष्ठ माना गया है।

भक्तप्रत्याख्यान के अतिरिक्त समाधिमरण का एक रूप इंगिनिमरण बताया है। इसमें साधक दूसरों से सेवा लेने का त्रिविध रूप से परित्याग कर देता है, ऐसा भिक्षु हरियाली पर नहीं सोए अपितु जीवों से रहित स्थण्डिल भूमि पर ही सोए। वह अनाहार भिक्षु देह आदि के प्रति ममत्व का विसर्जन करके परीषहों से आक्रान्त होने पर उन्हें समभाव से सहन करे। इन्द्रियों के ग्लान हो जाने पर वह मुनि समितिपूर्वक ही अपने हाथ-पैर आदि का संकोच-विस्तार करे, क्योंकि जो अचल एवं समभाव से युक्त होता है वही निन्दित नहीं होता। वह जब लेटे-लेटे या बैठे-बैठे थक जाय तो शरीर के संधारण के लिए थोड़ा गमनागमन करे या हाथ-पैरों को हिलाएँ, किन्तु यदि सम्भव हो तो अचेतनवत् निश्चेष्ट हो जाये। इस अद्वितीय मरण पर आसीन व्यक्ति उन काष्ठ-स्तम्भों या फलक आदि का सहारा न ले, जो दीमक आदि से युक्त हो अथवा वर्जित हो। जो साधक इंगिनिमरण से भी उच्चतर प्रायोपगमन या पादोपगमन संथारे को ग्रहण करता है वह सभी अंगों का निरोध करके अपने स्थान से चलित नहीं होता है-- यह प्रायोपगमन, भक्त प्रत्याख्यान और इंगिनिमरण की अपेक्षा उत्तम स्थान है। ऐसा भिक्षु जीव-जन्तु से रहित भूमि को देखकर वहाँ निश्चेष्ट होकर रहे और वहाँ अपने शरीर को स्थापित कर यह विचार करे कि जब शरीर ही मेरा नहीं है तो फिर मुझे परीषह या पीड़ा कैसी? वह संसार के सभी भोगों को नश्वर जानकर, उनमें आसक्त न हो। देवों द्वारा निमंत्रित होने पर वह देव माया पर श्रद्धा न करे। सभी भोगों में अमूर्च्छित होकर मृत्यु के अवसर का पारगामी वह तितिक्षा को ही परम हितकर जानकर निर्ममत्वभाव को ही अन्यतम साध्य माने।

उत्तराध्ययन और समाधिमरण

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचारांग में समाधिमरण के प्रकार, उसकी प्रक्रिया तथा उसे किन स्थितियों में ग्रहण किया जा सकता है, इसकी विस्तृत चर्चा है। आचारांग के पश्चात् प्राचीन स्तर के अर्धमागधी आगम उत्तराध्ययन में भी समाधिमरण का विवरण उसके 5वें एवं 36वें अध्याय में उपलब्ध होता है। उसके पाँचवें अध्याय में सर्वप्रथम मृत्यु के दो रूपों की चर्चा है -- 1. अकाम मरण और, 2. सकाममरण। उसमें यह बताया गया है कि अकाममरण बार-बार होता है जबकि सकाममरण एक ही बार होता है। ज्ञातव्य है कि यहाँ अकाममरण का तात्पर्य कामना से रहित मरण न होकर आत्म पुरुषार्थ से रहित निरुद्देश्य या निष्प्रयोजन पूर्वक मरण से है। इसी प्रकार सकाममरण का तात्पर्य पुरुषार्थ या साधना से युक्त सोद्देश्यमरण या मुक्ति के प्रयोजन पूर्वक मरण से है। उत्तराध्ययन के अनुसार अकाममरण करने वाला व्यक्ति संसार में आसक्त होकर अनाचार का सेवन करता है और काम-भोगों के पीछे भागता है, ऐसा व्यक्ति मृत्यु के समय भय से संत्रस्त होता है और हारने वाले धूर्त जुआरी की तरह शोक करता अकाममरण को अर्थात् निश्प्रयोजन मरण को प्राप्त होता है, जबकि सकाममरण पण्डितों को प्राप्त होता है। संयत जितेन्द्रिय पुण्यात्माओं को ही। अति प्रसन्न अर्थात् निराकुल एवं आघात रहित यह मरण प्राप्त होता है। ऐसा मरण न तो सभी भिक्षुओं को मिलता है, न सभी गृहस्थों को। जो भिक्षु हिंसा आदि से निवृत्त होकर संयम का अभ्यास करता है, उन्हें ही ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकाममरण प्राप्त होता है।

उत्तराध्ययन यह स्पष्ट निर्देश देता है कि मेधावी साधक बालमरण व पण्डितमरण की तुलना करके सकाम मरण को स्वीकार करे और मरण काल में क्षमा और दया धर्म से युक्त हो, तथाभूत आत्मभाव में मरण करे। जब मरण काल उपस्थित हो तो जिस श्रद्धा से प्रव्रज्या स्वीकार की थी, उसी श्रद्धा व शान्त भाव से शरीर के भेद अर्थात् देहपात की प्रतिक्षा करे। मृत्यु का समय आने पर तीन प्रकार के एक से एक श्रेष्ठ समाधिमरणों से शरीर का परित्याग करे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तराध्ययन के इस पंचम अध्याय में भी उन्हीं तीनों प्रकार के समाधिमरणों का उल्लेख है जिसकी चर्चा हम आचारांग के सम्बन्ध में कर चुके हैं। फिर भी ज्ञातव्य है कि उत्तराध्ययन का यह विवरण समाधिमरण के हेतु प्रेरणा प्रदान करने की ही दृष्टि से है। दूसरे शब्दों में यह मात्र उपदेशात्मक विवरण है। इसमें किन परिस्थितियों में समाधिमरण ग्रहण किया जाय इसकी चर्चा नहीं है। मात्र यत्र-तत्र समाधिमरण के कुछ संकेत ही हैं। उत्तराध्ययन में समाधि मरण या संलेखना के काल आदि के सम्बन्ध में और उसकी प्रक्रिया के सम्बन्ध में जो उल्लेख है वह उसके 36वें अध्याय में इस प्रकार से वर्णित है --

अनेक वर्षों तक श्रामण्य का पालन करके मुनि इस अनुक्रम से आत्मा की संलेखना -- विकारों को क्षीण करें। उत्कृष्ट संलेखना बारह वर्ष की होती है। मध्यम एक वर्ष की और जघन्य छह मास की है। प्रथम चार वर्षों में दुग्ध आदि विकृतियों का निर्यूहण -- त्याग करें, दूसरे चार वर्षों में विविध प्रकार का तप करें, फिर दो वर्षों तक एकान्तर तप (एक दिन उपवास और फिर एक दिन भोजन) करें। भोजन के दिन आचाम्ल करें। उसके बाद ग्यारहवें वर्ष में पहले छह महिनों तक कोई भी अतिविकृष्ट (तेला, चौला आदि) तप न करें। उसके बाद छह महीने तक विकृष्ट तप करे। इस पूरे वर्ष में परिमित (पारणो के दिन) आचाम्ल करे। बारहवें वर्ष में एक वर्ष तक कोटि सहित अर्थात् निरन्तर, आचाम्ल करके फिर मुनि पक्ष या एक मास का आहार से तप अर्थात् अनशन करे। कादर्पी, अभियोगी, किल्बिषिकी, मोही और आसुरी भावनाएँ दुर्गति देने वाली हैं। ये मृत्यु के समय में संयम की विराधना करती हैं। जो मरते समय मिथ्या-दर्शन में अनुरक्त हैं, निदान से युक्त हैं और हिंसक हैं, उन्हें बोधि बहुत दुर्लभ है। जो सम्यग् दर्शन में अनुरक्त हैं, निदान से रहित हैं, शुक्ल लेश्या में अवगाढ़- प्रविष्ट हैं, उन्हें बोधि सुलभ है। जो जिन वचन में अनुरक्त है, जिन वचनों का भाव पूर्वक आचरण करते हैं, वे निर्मल और रागादि से असंक्लिष्ट होकर परीत संसारी (परिमित संसार वाले) होते है।

अन्य अंगआगम और समाधिमरण

आचारांग व उत्तराध्ययन के पश्चात् अर्धमागधी आगमों में स्थानांग और समवायांग में समाधिमरण से सम्बन्धित मात्र कुछ संकेत हैं। स्थानांगसूत्र (2/4) में दो-दो के वर्गों में विभाजित करते हुए श्रमण भगवान महावीर द्वारा अनुमोदित और अननुमोदित मरणों का उल्लेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार मरण कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अननुमोदित नहीं किये हैं -- वलन्मरण और वशार्तमरण। इसी प्रकार निदानमरण और तद्भवमरण, गिरिपतन और तरूपतनमरण, जल-प्रवेशमरण और अग्निप्रवेशमरण, विषभक्षणमरण और शास्त्रावपातन मरण। ये दो-दो प्रकार के मरण श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए श्रमण भगवान महावीर ने कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अनुमोदित नहीं किये हैं। किन्तु कारण-विशेष होने पर वैहायस (वैखानस) और गिद्धपृष्ठ ये दो मरण अनुमोदित हैं। श्रमण महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के मरण सदा वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अनुमोदित किये हैं -- प्रायोपगमनमरण और भक्त प्रत्याख्यानमरण। प्रायोपगमनमरण दो प्रकार का कहा गया है -- निर्हारिम और अनिर्हारिम। प्रायोपगमन मरण नियमतः अप्रतिकर्म होता है। भक्तप्रत्याख्यानमरण दो प्रकार का कहा गया है-- निर्हारिम और अनिर्हारिम। भक्त प्रत्याख्यानमरण नियमतः सप्रतिकर्म होता है।

समवायांग (समवाय 17) में मरण के निम्न सत्रह प्रकारों का उल्लेख हुआ है --

1. आवीचिमरण, 2. अवधिमरण, 3. आत्यान्तिकमरण, 4. वलन्मरण, 5. वशार्तमरण, 6. अन्तःशल्यमरण, 7. तद्भव मरण, 8. बालमरण, 9. पण्डित मरण, 10. बालपण्डित मरण, 11. छद्मस्थमरण, 12. केवलिमरण, 13. वैखानसमरण, 14. गृद्धपृष्टमरण, 15. भक्त प्रत्याख्यानमरण, 16. इंगिनिमरण एवं 17. पादोपगमनमरण।

इनमें से बालपण्डितमरण, पण्डितमरण, छद्मस्थमरण, केवलीमरण, भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनिमरण व प्रायोपगमन का संबन्ध समाधिमरण से है। किन्हीं स्थितियों में वैखानसमरण, गृद्धस्पृष्टमरण को जैन परम्परा में भी उचित माना गया है। किन्तु ये दोनों अपवादिक स्थिति में ही उचित माने गये हैं जैसे जब ब्रह्मचर्य के पालन और जीवन के संरक्षण में एक ही विकल्प हो, तो ऐसी स्थिति में वैखानसमरण द्वारा शरीर त्याग को उचित माना गया है। ज्ञातव्य है कि भगवतीआराधना में भी समवायांग के समान ही मरण के उपर्युक्त सत्रह प्रकारों का उल्लेख है। यद्यपि कहीं-कहीं उनके नाम एवं क्रम में अन्तर दिखायी देता है। उदाहरणार्थ समवायांग में छद्मस्थमरण का उल्लेख है जबकि भगवतीआराधना में इसका उल्लेख नहीं है। इसके स्थान पर उसमें ओसन्नमरण का उल्लेख है। समवायांग के पश्चात् ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा अनुत्तरौपपातिकदशा तथा विपाकदशा आदि अंग आगमों में जीवन के अंतिम काल में संलेखना द्वारा शरीर त्यागने वाले साधकों की कथाएँ हैं। इसमें भगवतीसूत्र में अम्बड़ संन्यासी और उसके 500 शिष्यों के द्वारा अदत्त जल का सेवन नहीं करते हुए गंगा की बालू पर समाधिमरण लेने का उल्लेख है। उपासकदशा में भगवान महावीर के आनन्द, कामदेव, सकडालपुत्र, चुलिनीपिता आदि दश गृहस्थ उपासकों द्वारा समाधिमरण ग्रहण करने और उनमें विघ्नों के उपस्थित होने तथा आनन्द को इस अवस्था में विस्तृत अवधिज्ञान उत्पन्न होने, गौतम के द्वारा आनन्द से क्षमा-याचना करने आदि के उल्लेख हैं। इसी प्रकार अन्तकृतदशा में कुछ श्रमणों और आर्यिकाओं द्वारा समाधिमरण स्वीकार करने और उस दशा में कैवल्य एवं मोक्ष प्राप्त करने के निर्देश हैं। किन्तु विस्तार भय से इन सबकी चर्चा में जाना हम यहाँ आवश्यक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं समझते। इतना अवश्य ज्ञातव्य है कि इनमें से कुछ कथाओं के निर्देश श्वेताम्बर परम्परा में मरण विभक्ति में तथा अचेल परम्परा में भगवतीआराधना में भी पाये जाते हैं। यहाँ हम केवल अन्तकृतदशा (वर्ग 8. अध्याय 1) का वह उल्लेख करना चाहेंगे जिसमें साधक किस स्थिति में समाधिमरण ग्रहण करता था, इसका सुन्दर चित्रण निम्न है --

"तत्पश्चात् काली आर्या, उस उराल-प्रधान, (विपुल, दीर्घकालीन, विस्तीर्ण, सश्रीक-शोभासम्पन्न, गुरु द्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, बहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी, निरोगता-जनक, शिव-मुक्ति के कारण-भूत, धन्य, मांगल्य, पापविनाशक, उदग्र-तीव्र, उदार-निष्काम होने के कारण औदार्य वाले, उत्तम, अज्ञान अन्धकार से रहित और महान् प्रभाव वाले, तपःकर्म से शुष्क-नीरस शरीर वाली, रूक्ष, मांस रहित और नसों से व्याप्त हो गयी थी। जैसे कोई कोयलों से भरी गाड़ी हो, सूखी लकड़ियों से भरी गाड़ी हो, पत्तों से भरी गाड़ी हो, धूप में डालकर सुखाई हो अर्थात् कोयला, लकड़ी पत्ते आदि खूब सुखा लिये गये हों और फिर गाड़ी में भरे गये हों, तो वह गाड़ी खड़-खड़ आवाज करती हुई चलती है और ठहरती है, उसी प्रकार काली आर्या हाड़ों की खड़-खड़ाहट के साथ चलती थी और खड़-खड़ाहट के साथ खड़ी रहती थी। वह तपस्या से तो उपचित-वृद्धि को प्राप्त थी, मगर मांस और रुधिर से अपचित-ह्रास को प्राप्त हो गयी थी। भस्म के समूह से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान वह तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव शोभायमान हो रही थीं।

एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में काली आर्या के हृदय में स्कन्दमुनि के समान यह विचार उत्पन्न हुआ -- "इस कठोर तप-साधना के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है। तथापि जब तक मेरे इस शरीर में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम है, मन में श्रद्धा, धैर्य एवं वैराग्य है तब तक मेरे लिये उचित है कि कल सूर्योदय होने के पश्चात् आर्या चंदना से पूछकर, उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर, संलेखना झूषणा का सेवन करती हुई भक्तपान का त्याग करके, मृत्यु के प्रति निष्काम होकर विचरण करूँ।" ऐसा सोचकर वह अगले दिन सूर्योदय होते ही जहाँ आर्या चंदना थी वहाँ आई और वंदना-नमस्कार कर इस प्रकार बोली-- "हे आर्ये ! आपकी आज्ञा हो तो मैं संलेखना झूषणा करती हुई विचरना चाहती हूँ।" आर्या चन्दना ने कहा -- "हे देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो। सत्कार्य में विलम्ब न करो।" तब आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर काली आर्या संलेखना झूषणा ग्रहण करके यावत् विचरने लगी। काली आर्या ने आर्या चन्दना के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और पूरे आठ वर्ष तक चारित्रधर्म का पालन करके एक मास की संलेखना से आत्मा को झोषित कर साठ भक्त का अनशन पूर्ण कर, जिस हेतु से संयम ग्रहण किया था यावत् उसको अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक पूर्ण किया और सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तकृतदशा में जब शरीर पूर्णतया ग्लान हो जाय, ऐसी स्थिति में ही समाधिमरण लेने का उल्लेख है।

प्रकीर्णक और समाधिमरण

श्वेताम्बर परम्परा में समाधिभरण से सम्बन्धित जो ग्रन्थ लिखे गये हैं, उनमें चन्द्रवेध्यक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, संस्तारक, भक्त परिज्ञा और मरण विभक्ति प्रमुख हैं। चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक का अन्तिम लक्ष्य तो समाधिमरण का निरूपण ही है, किन्तु उसकी पूर्व भूमिका के रूप में विनय गुण, आचार्य गुण, विनय निग्रह गुण, ज्ञान गुण और चरण गुण द्वार नामक प्रथम पांच द्वारों में समाधिमरण की पूर्व भूमिका के रूप में सम्बन्धित विषयों का विवरण दिया गया है और अन्त में छठां समाधिमरण द्वार है। इस प्रकीर्णक में 175 गाथाएँ हैं, किन्तु कुछ प्रतियों में 75 गाथाएँ और भी मिलती हैं किन्तु उनमें से अधिकांश गाथायें आतुरप्रत्याख्यान में यथावत् उपलब्ध होती हैं। ग्रन्थ के अन्त में मरण गुण द्वार नामक सप्तम द्वार में सबसे अधिक 58 गाथाएँ है। इसमें अकृतयोग और कृतयोग के माध्यम से यह बताया गया है कि जो व्यक्ति विषय-वासनाओं के वशीभूत होकर जीवन जीता है, वह अकृत योग है तथा जो इसके विपरीत वासनाओं एवं कषायों पर नियन्त्रण कर जीवन जीता है वह कृतयोगी है और जो कृतयोगी है, उसी का मरण सार्थक है या समाधिमरण है। इसमें किस प्रकार की जीवन दृष्टि व आचार-विचार का पालन करते हुए व्यक्ति समाधिमरण को प्राप्त कर सकता है, इसका विस्तृत विवेचन है। इसमें कहा गया है कि जो सम्यक्त्व से युक्त लब्धबुद्धि साधक आलोचना करके मरण को प्राप्त होता है उसका मरण शुद्ध होता है इसके विपरीत जो इन्द्रिय सुखों की ओर दौड़ता है वह अकृत परिक्रम जीव आराधना काल में विचलित हो जाता है। जिस प्रकार लक्ष्य भेद का साधक अपना ध्यान बाह्य विषयों की ओर न लगाकर केवल लक्ष्य की ओर रखता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति राग-द्वेष का निग्रह करता है तथा त्रिदण्ड और चार कषायों से अपनी आत्मा को लिप्त नहीं होने देता। पांचों इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखता है। छह जीव निकाय की हिंसा एवं सात भयों से रहित मार्दव भाव से युक्त होता है। आठ मदों से रहित होकर नव प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन करता है तथा दस धर्म का पालन करते हुए शुक्ल ध्यान के अभिमुख होता है वही व्यक्ति मरण काल में कृत योगी होता है। जो व्यक्ति जिन उपदृष्ट समाधिमरण की आराधना करता है वह धूत क्लेश होकर भावशल्यों का निवारण करके शुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है। जिस प्रकार सुकुशल वैद्य भी अपनी व्याधि को अन्य से कहकर उसकी चिकित्सा करवाता है, उसी प्रकार साधु भी गुरु के समीप अपने दोषों की आलोचना करके मृत्यु के समय शुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है। जो साधु मरणकाल में आसक्त नहीं होता, वही आराधक है। इस प्रकार चन्द्रवेध्यक मुख्य रूप से समाधिमरण करने वाले साधक की जीवन दृष्टि कैसी होना चाहिए, इसकी चर्चा करता है।

चन्द्रवेध्यक के पश्चात् जो प्रकीर्णक ग्रन्थ पूर्णतः समाधि समाधिमरण की अवधारणा को ही अपना विषय बनाते हैं, उनमें आतुरप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान प्रमुख हैं।

ज्ञातव्य है कि आतुरप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान की लगभग एक सौ गाथाएँ मूलाचार के संक्षिप्त प्रत्याख्यान और बृहत् प्रत्याख्यान नामक अध्यायों में उपलब्ध होती हैं। 'आतुरप्रत्याख्यान' के नाम से तीन प्रकीर्णक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। एक आतुरप्रत्याख्यान में तीस गाथाएँ और कुछ गद्य भाग है, जबकि दूसरे में 34 गाथाएँ हैं और तीसरे में 71 गाथाएँ हैं। वैसे इन सभी आतुरप्रत्याख्यान नामक प्रकीर्णकों का विषय समाधिमरण ही है। प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आतुरप्रत्याख्यान में पंच मंगल के पश्चात् अरिहंत आदि से क्षमा-याचना और उत्तम अर्थ अर्थात् समाधिमरण की आराधना के लिए 18 पाप स्थानों का और शरीर के संरक्षण का परित्याग तथा अन्त में सागार एवं निरागार समाधि मरण के प्रत्याख्यान की चर्चा है। इसके अन्त में संसार के सभी प्राणियों से क्षमा याचना के सन्दर्भ में 13 गाथाएँ हैं और अन्त में एकत्व भावना का उल्लेख है। जिसमें कहा गया है कि "ज्ञान-दर्शन से युक्त एक मेरा आत्मा ही शाश्वत है, शेष सभी बाह्य पदार्थ सांयोगिक हैं। सांयोगिक पदार्थों के प्रति ममत्व ही दुःख परम्परा का कारण है। अतः त्रिविध रूप से संयोग का परित्याग कर देना चाहिए"। ज्ञातव्य है कि ये गाथाएँ भगवतीआराधना एवं मूलाचार के साथ-साथ कुंद-कुंद के ग्रन्थों में भी यथावत रूप में उपलब्ध होती है। आतुरप्रत्याख्यान नामक दूसरे ग्रन्थ में अविरति का प्रत्याख्यान, ममत्व त्याग, देव के प्रति उपालम्भ, शुभ भावना, अरहंत आदि का स्मरण आदि समाधिमरण के अंगों की चर्चा है। इसी नाम के तृतीय प्रकीर्णक 71 गाथाएँ हैं। इसमें मुख्य रूप से बाल-पण्डित मरण और पण्डित मरण ऐसे दो प्रकार के समाधिमरणों की चर्चा करता है। इसमें प्रथम 4 गाथाओं में देशव्रती श्रावक के लिये बाल-पण्डित मरण का विधान है जबकि मुनि के लिए पण्डित मरण का विधान है। इसमें उत्तम अर्थ समाधि मरण की प्राप्ति के लिए किस प्रकार के ध्यानों (विचारों) की आवश्यकता है, इसकी चर्चायें है। इसके पश्चात् सब पापों के प्रत्याख्यान के साथ आत्मा की एकत्व की अनुभूति की चर्चा भी है। अन्त में आलोचनादायक और आलोचना ग्राहक के गुणों की चर्चा करते हुए तीन प्रकार के मरणों की चर्चा की गई है -- बाल-मरण, बाल-पण्डितमरण, पण्डितमरण। इसके पश्चात् असमाधिमरण के फल की चर्चा की गयी है और फिर यह बताया गया है कि बालमरण और पण्डित मरण क्या है ? शस्त्र ग्रहण, विष-भक्षण, जल-प्रवेश, अग्नि-प्रवेश आदि द्वारा मृत्यु को प्राप्त करना बालमरण है तथा इसके विपरीत अनशन द्वारा देहासक्ति का त्याग कर कषायों को क्षीण करना पण्डित मरण है। अन्त में पण्डितमरण की भावनाएँ और उसकी विधि की चर्चा है।

महाप्रत्याख्यान नामक प्रकीर्णक में 142 गाथाएँ हैं। इसमें बाह्य एवं अभ्यान्तर परिग्रह का परित्याग, सर्वजीवों से क्षमा याचना, आत्मालोचन, ममत्व का छेदन, आत्मस्वरूप का ध्यान, मूल एवं उत्तर गुणों की आराधना, एकत्व भावना, संयोग सम्बन्धों के परित्याग आदि की चर्चा करते हुए आलोचक के स्वरूप का भी विवरण दिया गया है। इसी प्रसंग में पाँच महाव्रतों एवं समिति-गुप्ति के स्वरूप की चर्चा भी है। साथ ही तप के महत्त्व को बताया गया है। फिर अकृत-योग एवं कृतयोग की चर्चा करके पण्डित-मरण की प्ररूपणा की गयी है। इसी प्रसंग में ज्ञान की प्रधानता का भी चित्रण हुआ है। अन्त में संसारतरण एवं कर्मों से विस्तार पाने का उपदेश देते हुए आराधना रूपी पताका को फहराने का निर्देश है। साथ ही पाँच प्रकार की आराधना व उनके फलों की चर्चा करते हुए धीरमरण (समाधिमरण) की प्रशंसा की गयी है।

संस्तारक प्रकीर्णक का विषय भी समाधिमरण ही है। इस प्रकीर्णक में 122 गाथाएँ हैं। प्रारम्भ में मंगल के साथ-साथ कुछ श्रेष्ठ वस्तुओं और सद्गुणों की चर्चा है। इसमें कहा गया है कि समाधिमरण परमार्थ, परम-आयतन, परमकल्प और परमगति का साधक है। जिस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार पर्वतों में मेरूपर्वत एवं तारागणों में चन्द्र श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सुविहित जनों के लिए संथारा श्रेष्ठ है। इसी में आगे 12 गाथाओं में संस्तारक के स्वरूप का विवेचन है। इस प्रसंग में यह बताया गया है कि कौन व्यक्ति समाधिमरण को ग्रहण कर सकता है ? यह ग्रन्थ क्षपक के लाभ एवं सुख की चर्चा करता है। इसमें संथारा ग्रहण करने वाले कुछ व्यक्तियों के उल्लेख हैं यथा -- सुकोशल ऋषि, अवन्ति-सुकुमाल, कार्तिकार्य, पाटलीपुत्र के चंदक-पुत्र (सम्भवतः चन्द्रगुप्त) तथा चाणक्य आदि।

ज्ञातव्य है कि इसकी अधिकांश कथाएँ यापनीय ग्रन्थ भगवतीआराधना में भी उपलब्ध होती हैं। विद्वानों से अनुरोध है कि संस्तारक एवं मरण-विभक्ति में वर्णित इन कथाओं की बृहत्कथा कोश तथा आराधना कोश से तुलना करें। अन्त में संस्तारक की भावनाओं का चित्रण है। इसकी अनेक गाथाएँ आतुरप्रत्याख्यान एवं चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक में भी मिलती हैं।

श्वेताम्बर आगमसाहित्य में समाधिमरण के सम्बन्ध में सबसे विस्तृत ग्रन्थ मरणविभक्ति है। वस्तुतः मरण विभक्ति एक ग्रन्थ न होकर समाधिमरण से सम्बन्धित प्राचीन आठ ग्रन्थों के आधार पर निर्मित हुआ एक संकलन ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें इन आठ ग्रन्थों की गाथाएँ कहीं शब्द रूप से तो कहीं भाव रूप से ही गृहीत हैं। फिर भी समाधि मरण सम्बन्धित सभी विषयों को एक स्थान पर प्रस्तुत करने की दृष्टि से यह ग्रन्थ अति महत्त्वपूर्ण है। इसमें 663 गाथाएँ हैं। यह ग्रन्थ संक्षिप्त होते हुए भी भगवतीआराधना के समान ही अपने विषय को समग्र रूप से प्रस्तुत करता है। विस्तार भय से यहां इसकी समस्त विषय-वस्तु का प्रतिपादन कर पाना सम्भव नहीं है। इसमें 14 द्वार अर्थात् अध्ययन हैं। इस ग्रन्थ में भी संस्तारक के समान ही पण्डित मरणपूर्वक मुक्ति प्राप्त करने वाले साधकों के दृष्टान्त हैं। जिनमें से अधिकांश भगवतीआराधना एवं संस्तारक में मिलते हैं। इसी ग्रन्थ में अनित्य आदि बारह भावनाओं का भी विवेचन है।

इसके अतिरिक्त आराधनापताका नामक एक ग्रन्थ और है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। कुछ विद्वानों का ऐसा कहना है कि यह ग्रन्थ यापनीय ग्रन्थ भगवतीआराधना के आधार पर आचार्य वीरभद्र द्वारा निर्मित हुआ है, किन्तु इस ग्रन्थ में भक्त-परिज्ञा, पिण्ड-निर्युक्ति और आवश्यक- निर्युक्ति की अनेकों गाथाएँ भी हैं। अतः यह किस ग्रन्थ के आधार पर निर्मित हुआ है, यह शोध का विषय है।

इसी प्रकार श्वेताम्बर परम्परा में समाधिमरण से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ परवर्ती श्वेताम्बराचार्यों द्वारा भी लिखे गये हैं, जिनमें पूर्ण विस्तार के साथ समाधिमरण सम्बन्धी विवरण है किन्तु ये ग्रन्थ परवर्तीकाल के हैं, और हम अपने विषय को अर्धमागधी आगमसाहित्य तक ही सीमित रखने के कारण इनकी विशेष चर्चा यहां नहीं करना चाहेंगे। यह समस्त चर्चा भी हमने संकेत रूप में ही की है। विद्वानों से अनुरोध है कि वे इस तुलनात्मक अध्ययन को आगे बढ़ायें। इस सम्बन्ध में अनेक आगमिक व्याख्या ग्रन्थ जैसे आचारांग निर्युक्ति, सूत्रकृतांग निर्युक्ति, आवश्यक निर्युक्ति, निशीथभाष्य, बृहत्कल्प भाष्य, व्यवहार भाष्य, निशीथचूर्णि आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी उनके उपजीव्य हो सकते हैं। इसी प्रकार आगमों की शीलांक और अभयदेव की वृत्तियां भी बहुत कुछ सूचनायें प्रदान कर सकती हैं। उदाहरण के रूप में क्षपक अर्थात् संलेखना लेने वाले श्रमण के मरणोपरान्त देह को किस प्रकार विसर्जित किया जाये, इसकी चर्चा भगवतीआराधना और निशीथ चूर्णि में समान रूप से मिलती है। आशा है विद्वानों की आगामी पीढ़ी इस तुलनात्मक चर्चा को पूर्णता प्रदान करेगी।

- प्रो. सागरमल जैन, पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी-5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org